RNI No.: RAJBIL/2013/54153

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

वर्ष-10 • अंक-03-04 • त्रैमासिक • जुलाई-दिसम्बर, 2022

A Peer Reviewed Research Quarterly

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	श्री गुरूदेव विमर्श	प्रो. हरिशंकर पाण्डेय	06-10
02.	जैन धर्म की प्राचीनता	प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'	11-13
03.	जैन स्तोत्र साहित्य में नारी एवं लक्ष्मी की अवधारणा	प्रो अनेकांत कुमार जैन	14-16
04.	प्राकृत साहित्य के संदर्भ में अठारह भाषाएँ बोलने वाला भारत	डॉ. दिलीप धींग	17-20
05.	कहानीकार प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी की कहानियों का वैशिष्टय	प्रो. शम्भूनाथ तिवारी	21-23
06.	रत्नपालचरितम् में रस विमर्श	डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा	24-28
07.	लक्ष्य निर्माण और प्राप्ति	श्रीमती पुष्पा कोठारी	29-36
08.	भारतीय चिन्तन-सरणि में नारी-विमर्श	डॉ विक्रम जीत	37-42
09.	हिन्दी दलित साहित्य : एक ऐतिहासिक पूर्वावलोकन	डॉ. जय प्रकाश सिंह	43-47
10.	Teaching English for Professional Development of the Learner	Dr Sanjay Goyal	48-54
11.	A reflection on New Education Policy (NEP-2020) with reference to Teacher Education in India	Chinmayee Das Dr. Bhabagrahi Pradhan	55-58

हिन्दी दलित साहित्य : एक ऐतिहासिक पूर्वावलोकन

डॉ. जय प्रकाश सिंह

भूमिका

प्राचीनकाल में हिन्दुओं में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी। वैदिक काल से उत्तर वैदिक काल आते-आते इस व्यवस्था में काफी जटिलता आ गई थी। प्राचीन वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था ने हिन्दु समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित किया था। शुरू में यह विभाजन गुण एवं कर्म पर आधारित थे, बाद में धीरे-धीरे जन्म पर आधारित हो गये। इस वर्ण व्यवस्था के अनुसार समाज में ब्राह्मण को श्रेष्ठत्व प्रदान करने के साथ-साथ सामाजिक स्तर पर उन्हें प्रभावशाली बनाया गया। जिससे समाज में ब्राह्मणों की प्राधान्यता बढ़ गई थी। इस वर्ण व्यवस्था में ऊंच-नीच, बाह्य आडम्बर, भेदभाव इतना भयंकर रूप धारण कर लिया था कि निम्न वर्ण के लोगों की छाया का स्पर्श भी पाप समझा जाने लगा जिससे शूद्र वर्ण के लोगों का जीना दूभर हो गया। धीरे-धीरे शूद्रों में विविध जाति-उपजातियों की सृष्टि हुई। इन जाति-उपजाति के लोगों (मजदूर, भूमिहीन एवं गरीब किसान) को दलित माना गया।

दलित शब्द का अर्थ

दलित शब्द को अंग्रेजी शब्दकोश में डिप्रेस (Depress) दिया गया है जिसका दो अर्थ मिलते हैं-1. दलित (जो सामाजिक तथा आर्थिक रूप से कहीं ज्यादा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ा हो), 2. धक्का देना, नीचे खिंचना, कमजोर, नीचा दिखाना आदि अर्थ में लिया गया है। दलित शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों का कहना है कि-

डॉ. आरती झा के अनुसार, "दलित शब्द का सामान्य अर्थ है- दरिद्र और उत्पीड़न। इसका अर्थ दबा, कुचला, अपमानित और प्रताड़ित प्राणी होता है। आज 'दलित' का अर्थ अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के रूढ़ अर्थ में होने लगा है। जिसका दलन एवं दमन हुआ हो, दबाया गया हो, जो उत्पीड़न, शोषित, सताया, गिराया, उपेक्षित, घृणित, रौंदा,

मसला, कुचला, विनष्ट, मर्दित, पस्त और वंचित हो वह दलित है। दलित किसी जाति एवं धर्म का कोई शब्द नहीं है। वह कोई भी हो सकता है। शूद्र हो, स्त्री हो या अन्य कोई भी हो।''

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी के अनुसार, ''दलित एक संवेदन है विचार, जिसका अर्थ दबाया गया मनुष्य, किसी भी जाति, वर्ण, धर्म, मन एवं भौगोलिक क्षेत्र का हो दलित है।''

मोहन दास नैमिशराय के अनुसार, 'दलित और सर्वहारा इन दो शब्दों में पर्याप्त भेद है। दलित की व्याप्ति अधिक है तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक शोषण का अंतर्भाव होता है तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक सीमित है।''

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन कहते हैं कि- ''दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि दलित दबा हुआ, उत्पीड़न, शोषित, सताया, उपेक्षित, घृणित, रौंदा, कुचला आदि किसी भी जाति, धर्म या भौगोलिक क्षेत्र का हो सकता है। रामचन्द्र वर्मा ने अपने शब्दकोश में दलित का अर्थ इसी रूप में लिखा है- मसला हुआ, माद्रित, दबाया, रौंदा, कुचला हुआ, विनष्ट किया हुआ।

दलित साहित्य के ऐतिहासिक पहलू

प्राचीन हिन्दू समाज में छुआछूत की भावना मुख्यतः बनी हुई थी। वर्ण व्यवस्था की स्थापना तो समाज को जोड़ने हेतु की गई परन्तु कालक्रम के ऐतिहासिक पहलू को देखने से पता चलता है कि तत्कालीन भारत में जाति व्यवस्था का अमानवीय रूप समाज में जन्म आधारित स्तर होने के कारण भेदभाव उत्पन्न होने के साथ-साथ अनेक प्रतिभाओं के विनाश का कारण बनता गया था। जातिवाद का भयावह स्थिति होने से समाज में प्रेम और भाईचारे के बदले घृणा और अशांति हमेशा बनी रहने लगी थी। दलित साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। इसका प्रारम्भ हम वैदिक काल से मान सकते हैं क्योंकि वेदों, उपनिषदों एवं स्मृतिग्रंथ साहित्य में दलितों के हितों को नकार कर एक तरफा साहित्य लिखा गया।

आदिकाल

इस काल में चार वर्णों की व्यवस्था के रूप में सामाजिक व्यवस्था की गई थी- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। इस तरह की सामाजिक व्यवस्था में बांट कर विषमता का बीज बो दिया गया था। बहुसंख्यक शूद्र वर्ग साहित्य लेखन एवं अभिव्यक्ति से वंचित होते गये। यहां तक कि शूद्र यदि वेद, मंत्र सुन लेगा तो उसके कानों में शीशा पिघला कर डाल दिया जायेगा। गलती से वेद, मंत्र का पाठ कर ले तो उसकी जिह्वा काट ली जायेगी। इस तरह की विषमता विश्व में कहीं भी नहीं मिलती। कुछ लोग दलित साहित्य के दर्शन का स्रोत गौतम बुद्ध को माना है। बुद्ध पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 250 वर्ष पूर्व वर्ण व्यवस्था का विरोध किया। साथ ही वर्ण व्यवस्था एवं सामाजिक अन्याय का विरोध करते हुए शूद्रों को अपने संघ में शामिल कर दलितों के उद्धार का द्वार खोला। इस परम्परा को उनके शिष्यों ने भी आगे बढ़ाया- सारीपुत्र, मोदगल्यान, महाकश्यप ने। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् लगभग 600 वर्ष के बाद बुद्ध चरित्र वर्ण सूची नामक काव्य का संग्रह किया गया, जिसमें दलितों के बारे में संवेदनात्मक रूप से वर्णन है। आठवीं, नवमी शताब्दी में बुद्ध धर्म के बाद महायान शाखा के सिद्धों ने दलित साहित्य की प्रेरणा को आगे बढ़ाया। सिद्धों की संख्या 84 थी। 84 सिद्धों में 60 तो शूद्र थे। इनकी प्रखर वाणी ने पहली बार समाज में वर्णभेद के प्रति चेतना जगायी। इनके तर्क और समता के उदाहरण समाज को इस नीति में बदलाव के प्रति जागरूक कर सके।

इस तरह एक शृंखलात्मक शुरूआत इन सिद्धों, ऋषियों ने शुरू की। सबसे पहले वैदिक व्यवस्था के बाह्य आड़म्बर, जाति व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया था। सिद्धों से ही जन्में आगे नौ नाथों (गोरखनाथ) ने भी ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर घोर विरोध किया। नाथ सम्प्रदाय में किसी भी वर्ग, जाति, धर्म या आश्रम का व्यक्ति दीक्षित हो सकता था। प्रो. रामबख्श ने अपनी पुस्तक ''दादूदया'' में ठीक ही लिखा है कि हिन्दू धर्म में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और वेदों की प्रामाणिकता का विरोध सबसे पहले हुआ, इस विरोध में बौद्ध धर्म ने सबसे पहले भूमिका निभायी, बौद्धों

की परम्परा में 84 सिद्ध हुए। उन्होंने बड़ी प्रखरता से जात-पात का खण्डन किया और वेदों की प्रामाणिकता का विरोध किया। संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा में काव्यरचना शुरू की। इस तरह ब्राह्मण धर्म के विरोध की दूसरी परम्परा की स्थापना की गई। सिद्धों के साथ-साथ नाथ सम्प्रदाय इस वेद विरोधी विचार को बल पहुंचाया। गुरु गोरखनाथ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अखिल भारतीय प्रभाव पड़ा। वेद विरोधी विचारों के सबसे प्रमुख प्रचारक श्री गोरखनाथ ही थे।

मध्यकाल

दलित चेतना का बीजारोपण आदिकाल में हुआ था। इसका पोषण, पल्लवन एवं प्रतिष्ठा निर्गुण सन्त कवियों ने किया। संत कवियों में चाहे नामदेव, कबीर हों, गुरु रविदास हों, पीपा हों, नानक हों, सेन हों या धन्ना हों। इन सभी ने बाह्य आड़म्बरों, कर्म-काण्डों के साथ जाति-पाति एवं वर्ण-व्यवस्था का विरोध कर यह सिद्ध कर दिया कि वर्ण-व्यवस्था और जाति-पाति मनुष्यों द्वारा निर्मित है। मध्यकालीन संत कवियों ने सामाजिक चेतना का उद्‌गार किया। उन्होंने भक्ति के माध्यम से सामाजिक संकीर्णता को पाटने का काम किया। इस काल में निर्गुण शाखा के अनेक कवि रैदास, पलटू, कबीर आदि ने वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा पर गंभीर चोट की थी।

दलित साहित्य का अर्थ

दलित साहित्य के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों का कहना है-

कुंवल भारती के अनुसार, "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को स्थापित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उसी की अभिव्यक्ति करता है ... यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का ओर जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।"

शरण कुमार के अनुसार, "दलित साहित्य का जन्म अस्पृश्यता की कोख से हुआ है।"

प्रेम कुमार मणि के अनुसार, "दलितों के लिए दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है।"

डॉ. एन. सिंह के अनुसार, "दलित साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखित वह साहित्य है जो सामाजिक, धार्मिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया हो।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि दलित साहित्य दलितों को हृदयहीन ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था के भेदभाव से मुक्ति दिलाने के लिए लिखा गया था, जिसमें दलितों के जीवन और उनकी समस्याओं को केन्द्र में रखकर किया गया साहित्य है। यह साहित्य सामाजिक अन्याय के विरूद्ध विद्रोह और आक्रोश है।

हिन्दी दलित साहित्य

हिन्दी दलित साहित्य का उद्‌भव नाथों और सिद्ध कवियों की रचनाओं से देखने को मिलता है। सिद्ध कवियों में बहुत सारे कवि शूद्र थे जिन्होंने अपनी तत्कालीन पीड़ा का परिप्रशासन किया था। इतना ही नहीं मध्य काल में संत कबीर और रैदास ने समाज में ब्राह्मणों के दलितों पर अन्याय-अत्याचार का बखूबी चित्रण के साथ उनकी असलियत का पर्दाफाश कर उनपर गंभीर चोट की। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी जिसका प्रमाण हमें दलित साहित्य से मिलता है। स्वतंत्रता के बाद में इनकी स्थिति में थोड़ा परिवर्तन दिखने लगा। अंग्रेजों के शासनकाल में दलितों की स्थिति में सुधार लाने में जहां एक ओर तत्कालीन बुद्धिजीवी समाज सुधारक राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, राममनोहर लोहिया, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जैसे महापुरुषों का भरसक प्रयास देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता पूर्व और बाद में फकीर मोहन सेनापति, गोपीनाथ महांति, प्रेमचन्द, रेणु, अमृतलाल नागर, जगदीशचन्द्र, गिरिराज किशोर, निराला, धूमिल, नागार्जुन जैसे कवि विशिष्ट साहित्यकारों ने दलितों की व्यथा-कथा को बड़ी संवेदना के साथ उभारने का सफल प्रयास किया था।

प्रेमचन्द और नागार्जुन जैसे रचनाकारों की रचनाओं में दलित जातियों के दुःख, परेशानी, सामाजिक यातनाओं को बड़ी बारीकी से रेखांकन कर समाज में आलोड़न

उत्पन्न किया था। फिर भी दलित साहित्यकार ऐसे कवि, कलाकारों की रचनाओं को दलित साहित्य के दर्जे में स्थान देने में हिचकिचाते थे। उनका कहना था कि दलित साहित्य में सामाजिक विविध व्यथा जात-पांत, छूत-अछूत भेदभाव को लेकर दलितों में जैसे आक्रोश की भावना दिखाई गई, साथ ही सवर्ण लोगों, खासकर ब्राह्मणों के ब्राह्मणवाद के खिलाफ संग्राम की जो ज्वाला जलाई गई, उसे अंतिम समय तक दलितों ने कमर कस कर लड़ना सीखा। ऐसी भावना इन रचनाओं में नहीं मिलती।

प्रमुख हिन्दी दलित साहित्यकार

बिहारी लाल हरित 1940-1980 ई. के दशक तक दलित हिन्दी साहित्य में काफी प्रभाव था। इन्होंने अपने काव्य संवेदना का निर्माण असमानता, शोषण और अन्याय के प्रतिकार का उल्लेख है जिसका सम्बन्ध समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने से है। इनकी रचना है- भीमायण महाकाव्य, वीरांगना झलकारी बाई महाकाव्य, जगजीवन ज्योति महाकाव्य, चमान नामा, अछूतों का बेताज बादशाह इत्यादि।

लालचन्द राही कवि ने भी दलित साहित्य को जीवन्त किया है। उन्होंने अपनी लेखनी के जरिये दलितों में चेतना उत्पन्न की, उन्हें संघर्ष कर अपना हक छीनना सिखाया। इसके अलावा आपने मिलन, समाज, अभागा, खादी की टोपी जैसे कुछ महत्त्वपूर्ण नाटकों की रचना कर दलित साहित्य को काफी समृद्ध किया।

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी दलित साहित्यकारों में एक प्रतिभा सम्पन्न कवि और ललित निबंधकार थे। उनकी प्रकाशित कृतियों में सवालों के सूरज, द्वार पर दस्तक, मूक माटी की मुखरता (काव्य संग्रह) पत्ते क्यों गिरते हैं दलित साहित्य और सामाजिक न्याय (निबंध संग्रह) अत्यन्त आकर्षक और लोकप्रिय हैं।

डॉ. प्रेमशंकर को एक दलित होने के नाते अपने जीवन की कटु अनुभूति और सामाजिक परिवेशन ने उन्हें दलित साहित्य रचना की दिशा में उत्प्रेरित किया। उनकी कृतियों में नयी कविता : नया मूल्यांकन, हिन्दी और उसकी उपभाषाएं, अपनी शताब्दी में उपेक्षित, दलितों का चीखता अभाव, कविता : रोटी की भूख तक बहुचर्चित हैं।

कंवल भारती द्वारा भी कई महत्त्वपूर्ण रचना की गई जिनमें मनुस्मृति : प्रतिक्रांति का धर्मशास्त्र, कांशीराम के दो चेहरे, डॉ. अम्बेड़कर : एक पुनर्मूल्यांकन, लोकतंत्र में भागीदारी के सवाल एवं काव्य संग्रह 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती है? आदि अत्यन्त लोकप्रिय रचनाएं हैं।

डॉ. एन. सिंह की प्रकाशित कृतियों में सतह से उठते हुए, विचार यात्रा में, मेरा दलित चिंतन, कठौती में गंगा, व्यक्ति और विमर्श, संपुट, दर्द के दस्तावेज, यातना की परछाइयां, काले हाशिए पर, चेतना के स्वर, शिखर की ओर, दलित साहित्य : चिन्तन के विविध आयाम, दलित साहित्य और युगबोध, रैदास ग्रंथावली, दृष्टिपथ के पड़ाव, दलित साहित्य : परम्परा विन्यास, सुश्री मायावती और दलित चिन्तन आदि। वे दलितों की व्यथा-कथा को आम जनता के सामने पहुंचाने वाले एक सफल कवि थे। व्यवस्था पर चोट एवं सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय उनका लक्ष्य था।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कृतियों में कविता संग्रह : सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका, अब और नहीं, शब्द झूठ नहीं बोलते। कहानी संग्रह- सलाम, घुसपैठिए, अम्बा एण्ड अदर स्टोरीज, छतरी, पच्चीस चौका डेढ़ सौ। आत्मकथा- जूठन। नाटक- चेहरे, कविता-ठाकर का कुंआ आदि जैसी रचनाओं के जरिये दलितों की त्रासदी का बखूबी चित्रण करते हुए दलित समाज में बड़ा आक्रोश उत्पन्न करने का प्रयास किया।

तुलसी राम द्वारा प्रकाशित कृतियों में 'मर्दहिया' (आत्मकथा) जहां सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विसंगतियों कदम-कदम पर दलितों का संघर्ष उजागर किया है।

कौशल्या बैसन्ती द्वारा कृतियों में 'दोहरा अभिशाप' (आत्मकथा) अपने जीवन की गंभीर एवं कटू अनुभूतियों को तटस्थता के साथ एक दलित स्त्री को दोहरे अभिशाप से गुजरना पड़ता है का वर्णन किया है।

सुशीला टाक भौर द्वारा कृतियों में 'शिकंजे का दर्द' (आत्मकथा) अपने पारिवारिक और सामाजिक संघर्ष के

साथ एक दलित स्त्री होने की विसंगतियों पर एक श्रेष्ठ रचना है।

हिन्दी साहित्य में आत्मकथा लेखन की परम्परा के जन्मदाता और प्रेरणास्रोत डॉ. अम्बेड़कर को माना जाता है। जिसका हिन्दी दलित साहित्यकारों पर पड़ा और कई आत्मकथाएं लिखी गई हैं- जैसे जूठन (ओम प्रकाश वाल्मीकि), अपने अपने पिंजरे, भाग-1, 2 (मोहनदास नैमिशराय), तिरस्कृत (सूरजपाल चौहान), दोहरा अभिशाप (कौशल्या बैसन्ती), झोंपड़ी से राजभवन (माताप्रसाद)- ये सारी आत्मकथाएं लेखकों के पारिवारिक जीवन, तत्कालीन सामाजिक परिवेश एवं विविध तथ्यों से परिपूर्ण एक-एक सफल दस्तावेज के रूप में माने जा सकते हैं।

भारतवर्ष में दलित चेतना के प्रचार-प्रसार में हिन्दी दलित साहित्यकारों का सबसे अधिक योगदान देखने को मिला है। इस दिशा में दलित साहित्यकारों के अलावा शुरू से कुछ गैर दलित साहित्यकारों ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है जिससे दलितों में चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया। महात्मा गांधी ने स्वयं ही ''अछूत'' के बदले हरिजन शब्द का प्रयोग कर हरिजन पत्रिका भी 1933 में शुरू की। साठ के दशक में महाराष्ट्र में वर्ण व्यवस्था के खिलाफ मराठी दलित कवियों ने ब्राह्मणवाद पर प्रहार किया। इसका प्रभाव न सिर्फ महाराष्ट्र बल्कि पूरे हिन्दुस्तान में देखने को मिला। फलतः हिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी के दलित कवियों ने बड़े जोश-खरोश से दलित साहित्य लिखना शुरू किया। आगे चलकर दलित साहित्य हिन्दी साहित्य का एक अंग बन गया। दूसरी ओर उत्तर प्रदेश में कुछ राजनैतिक उथल-पुथल (कांशीराम द्वारा डी.एस. और बसपा की स्थापना) के बाद हिन्दी दलित लेखकों को बल मिला। मण्डल कमीशन से दलित साहित्य को एक नई दिशा मिली। आगे 'हंस' और 'युद्धरत आदमी' जैसी पत्रिकाओं में दलित रचनाएं प्रकाशित होने लगी। विगत तीन दशकों में हिन्दी के दलित साहित्य में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, आत्मकथा, आलोचना जैसी साहित्य की विविध पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में रची गई। इस प्रकार हिन्दी में दलित साहित्य का उद्भव और विकास होने लगा। डॉ. एन. सिंह ने ठीक ही कहा है कि ''हिन्दी में दलित साहित्य की बकायदा शुरूआत बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुई। इसकी प्रेरणा डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा तो ली ही महात्मा ज्योतिबा फूले का संघर्ष, मार्क्स की क्रांति दृष्टि तथा मराठी का दलित साहित्य भी रहा।''

◆ ◆ ◆

संदर्भ सूची -

1. डॉ. आरती झा का 'भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना' लेख, नव विकास (शोध विशेषांक), 2012, पृ. 60, 61
2. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का लेख, सुमन लिपि, मासिक बम्बई (फ.-मा.), 1944, पृ. 5
3. उत्कृष्ट रविशंकर सोनकर का लेख 'दलित साहित्य : चिन्तन का आधार' नवनिकष शोध विशेषांक-2
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, 2014, पृ. 32
5. डॉ. एन.सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान : दलित साहित्य के प्रेरणास्रोत, 2012, पृ. 87
6. डॉ. दयानन्द बटोही, साहित्य में दलित चेतना, लेख, पश्चन्ती त्रैमासिक, अ.-जू. 1998, पृ. 129
7. शरण कुमार लिम्बले : हंस, जनवरी-फरवरी, 1919, पृ. 53
8. हिन्दी दलित साहित्य की 10 श्रेष्ठ रचनाएं, बीबीसी हिन्दी न्यूज
9. मोहनदास नैमिशराय, भारतीय दलित आंदोलन : एक संक्षिप्त इतिहास, बुक्स फॉर चेन्ज, आईएसबीएनः 81-87830-51-1
10. डॉ. दिनेश चौहार, ''दलित समाज की समस्याएं'', रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, 02
11. प्रो. इन्दु माहला, ''दलित सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विश्लेशण'', रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, 02
12. प्रो. उषा पी.पटेल, ''भारत में दलित समाज की स्थिति : (विकास एवं समस्याएं)'', रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, 02
13. डॉ. मदन मोहन, सिंह खालसा, ''दलित आन्दोलन'', रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, 02
14. मकवाणा जीतू भाई बाबू भाई, ''समकालीन हिन्दी दलित साहित्य एक अध्ययन'', सार्थ पब्लिकेशन, आणन्द-01
15. डॉ. विजय कुमार महांति, दलित विमर्श, एम.ए.(हिन्दी), डीडीसीई उत्कल यूनिवर्सिटी, पेपर-XIV

सहायक आचार्य

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राज.)